प्रथम वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सभ्यग्ज्ञान प्रवेशिका) अभ्यास ६

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. श्री. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. श्री. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड

सौजन्य : अ.सौ. लेखाबेन धनपतिभाई मोमाया - कच्छ बारोई - हाल जलगाँव

सूत्र - विधि और रहस्य

(चैत्यवंदन विधि चालू)

जावंति चेइआंइ (सर्व चैत्यवंदन) सूत्र

जावंति चेइआइं,

उड्ढे अ अहे अ तिरिअ / माणुसे लोअेअ

सव्वांइ ताइं वंदे,

इह संतो तत्थ संताई

-: शब्दार्थ :-

जावंति : जितनी
चेइआइं : चैत्यो - जिन प्रतिमायें
उड्ढे : उर्ध्वलोक में, देवलोक में
अ : और
अहे : अधोलोक में - भवनपति के स्थानो में
तिरिअलोअे / माणुसे लोअे : तिर्यग लोक में मनुष्य लोक में
सव्वाइं : सभी को
ताइं : उन्हें
वंदे : वंदन करता हुं
इह : यहो
संतो : रहा हुआ
तत्थ : वहाँ
संताइं : रहे हुओं को

अर्थ : उर्ध्वलोक, देवलोक, अधोलोक, पाताल लोक, और मनुष्यलोक में जितनी भी जिन प्रतिमायें (चैत्यो) हो, उन सभी को यहाँ मेरे स्थान में रहते हुए मैं वंदन करता हूं । इस सूत्र से तीन लोक की जिन-प्रतिमाओं (चैत्यो) को वंदन किया जाता है ।

जावंत केवि साहू (सर्व साधु वंदन) सूत्र

जावंत केवि साहू, भरहेरवय मेहाविदेहे अ,
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंडविरयाणं ।१।

-: शब्दार्थ :-

जावंत : जितने
के वि : कोई भी
साहू : साधुओ
भरह : भरत क्षेत्र
अेरवय : एरावत क्षेत्र
महाविदेहे : महाविदेह क्षेत्र में रहे
सव्वेसिं : सभी को
तेसिं : उनको
पणओ : प्रणाम करता हूं
तिविहेण : तीन प्रकार से
तिदंड : तीन दंड करणे से
विरयाणं : विराय पाये हुओ को

अर्थ : भरत ऐरावत और महाविदेह क्षेत्रों में रहे हुए जो कोई भी साधुओ, मुनिओ मन,वचन और काया से पापवाली प्रवृत्ति करते नहीं, करवाते नहीं तथा करने वालों की अनुमोदना करते नहीं, उन सभी को मैं प्रणाम करता हूं । इस सूत्र से पंद्रह कर्मभूमि में रहे सभी साधुओं को वंदन किया गया है ।

इच्छा कारेण संदिसह भगवन् ! स्तवन भणुंजी ।
(कोई भी प्रभु का गुणों से युक्त स्तवन बोलना)

सामान्य जिन स्तवन

आनंदकी घडी आइ, सखी रे आज
करके कृपा प्रभु दर्शन दीनो, भवकी पीर मीटाई;

मोह निंद्रासे जाग्रत करके, सत्यकी सान सुनाई,
तन मन हर्ष न माई.. सखी...।।१।।
नित्यानित्यका तोड बता कर, मिथ्या दृष्टि हटाई;
सम्यग्ज्ञानकी दिव्य प्रभाको अंतरमें प्रगटाई,
साध्य,साधन दिखलाई.. सखी... ।।२।।
त्याग वैराग्य संयम के, योग से, निस्पृह भाव जगाइ;
सर्वसंग परित्याग करा कर, अलख धून मचाई,
अपगत दुःख कहलाई.. सखी... ।।३।।
अपूर्वकरण गुणस्थानक सुखकर, श्रेणि क्षपक मंडवाइ;
वेद तीनो का छेद कराकर क्षीण मोही बनवाइ,
जीवन मुक्ति दिखलाई.. सखी... ।।४।।
भक्त वच्छल प्रभु करुणा सागर, चरण शरण सुखदाई,
जश कहे ध्यान प्रभुका ध्यावत, अजर अमर पद पाई,
द्वंद सकल मिट जाई....सखी... ।।५।।

उवसग्गहरं सूत्र - उपसर्ग हर स्तोत्र

उवसग्गहरं पासं, पासं वंदामि कम्म-घण-मुक्कं,
विसहर-विस-निन्नासं, मंगल-कल्लाण आवासं।।१ ।।
विसहर-फुलिंग-मतं, कंठे धारइ जो सया मणुओ ।
तस्स गह रोग-मारी, दुट्ठजरा जंति उवसामं।।२।।
चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ
नर-तिरिएसु वि जीवा, पावंति न दुक्ख - दोहग्गं ।।३।।
तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंत्तामणि-कप्पपायव-ब्भहिए ।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं।।४।।
इअ संथुओ महायस । भत्ति-भर-निब्भरेण हिअएण ।
ता देव ! दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास-जिणचंद।।५।।

उवसग्गहरं : विघ्नो ,उपद्रवों को दूर करने वाले
पासं : पार्श्व यक्ष (दूसरे अर्थ में समीप याने भक्तजनों के समीप हैं वो पार्श्व)
पासं : पार्श्वनाथ भगवान को
वंदामि : मैं वंदन करता हूँ
कम्म-घण-मुक्कं : निबिड-घाती कर्मो से रहित
विसहर : विषधर - साप
विस : जहर (विष)
निन्नासं : नाश करने वाले
मंगल : मंगल
कल्लाण : कल्याण
आवासं : रहने का स्थान रुप
विसहर फुलिंग मंतं : विसहर फुलिंग नाम के मंत्र को
कंठे : कंठे में
धारेइ : धारण करता है
जो : वह
सया : सदा, निरंतर
मणुओ : मनुष्य
तस्स : उसके
गह : ग्रहो
रोग : रोग
मारी : मरकी
दुट्ठजरा : दुष्ट ज्वर, बुखार
जंति : जाते हैं, प्राप्त करते हैं
उवसामं : उपशांति को
चिट्ठउ : रहो
दूरे : दूर
मंतो : मंत्र
तुज्ज : तुम्हें
पणामो : प्रणाम
वि : भी
बहुफलो : बहुत फल देनेवाला
होइ : होता है
नर-तिरिअेसु : मनुष्यगति और तिर्यंचगति में
वि : भी
जीवा : जीव
पावंति : पाते हैं
न : नहीं
दुख्ख : दुःख
दोहग्गं / दोगच्छं : दुर्भाग्य को
तुह : तेरे
सम्मते : सम्यकत्व को
लध्धे : पाये फिर भी
चिंतामणी : चिंतामणी रत्न
कप्पपायवब्भहिये : कल्पवृक्ष से भी अधिक
पावंति : पाते है
अविग्घेणं : विघ्नबिना
जीवा : जीवो
अयरामर ठाणं : अजरामर मोक्षसन को
इअ : आ प्रमाणे
संथुओ : स्तुति किये गये
महायस : हे महायशस्वी
भत्तिभर : भक्ति के समुह से
निब्भरेण : भरपूर
हियअेण : हृदय से
ता : इससे
देव : हे देव
दिज्ज : देना
बोहिं : समकित को
भवे भवे : भवोभव / जन्मो जनम
पास जिणचंद : हे पार्श्वनाथ जिनचंद्र

उवसग्गहरं

अर्थ - उपद्रवों को दूर करनेवाला पार्श्वनाम का यक्ष सेवक है, जिनका ऐसे, तथा चार घातिकर्म के समुह से मुक्त हुये, सर्प के जहर का नाश करने वाले, तथा मंगल कल्याण के धामरुप, ऐसे श्री पार्श्वनाथ को मैं नमस्कार करता हुं (दूसरे अर्थ में उपद्रवों को दूर करने वाले भक्तजनों के समीप रहने वाले (प्रथम पासं का अर्थ समीप भी होता है) घातीकर्मो से मुक्त, सर्प के जहर का नाश करने वाले और मंगल तथा कल्याण के धाम रुप ऐसे श्री पार्श्वनाथ को मैं वंदन करता हूं ।)....१

श्री पार्श्वनाथ के नाम से युक्त **''विषधरफुलिंग''** नाम के मंत्र को जो मनुष्य सदा कंठ में धारण करता है, अर्थात निरंतर एकाग्र मन से उसका जाप करता है, उसके दुष्ट ग्रह, अनेक प्रकार के रोग, मरकी और दुष्ट, विषम ज्वर नाश हो जाते है, शांत हो जाते है । २

इस मंत्र की बात दूर रखें तो भी हे पार्श्वनाथ.. ! आपको किया गया प्रणाम भी बहुत फल को देने वाला होता है और मनुष्य और तिर्यंच गति में रहे जीव किसी भी प्रकार के दुःख या दुर्दशा पाते नहीं । ३

चिंतन मात्र से इच्छित फल देनेवाले चिंतामणी रत्न और इच्छित फल देनेवाले कल्पवृक्ष से भी अधिक शक्ति रखने वाला तुम्हारा सम्यकत्व दर्शन पाने से जीव सरलता से मोक्षस्थान पाते हैं ।.....४

इस तरह हे पार्श्व-जिनचंद्र....! हे महायशस्वी....! हे पुरिसादानीय मैने तुम्हारी स्तुति भक्ति भरे हृदय से की, तो हे देव....! मुझे भवोभव में जन्मोजन्म में तुम्हारा बोधिबीज सम्यक्त्व प्रदान करो ।

इस सूत्र में श्री पार्श्वनाथ प्रभु की स्तवना की गई है, तथा श्री पार्श्व प्रभु का नाम युक्त **''विसहर फुलिंग''** मंत्र का और उनको किये गये प्रणाम का महिमा वर्णित है । उसी प्रकार फलवर्णन पूर्वक सम्यक्त्व मांगने में आया है ।

श्री भद्रबाहूस्वामी के भाई वराहमिहिर ने जैन दीक्षा लेकर छोड दी ज्योतिष से ख्याति पाई, जैन साधुओं की निंदा करते । किसी राजा के तत्काल जन्मे पुत्र के आयुष्य कथन में और दूसरे एक निमित्त कथन में वो झुठे पडे और भद्रबाहूस्वामी सच्चे पडे । इससे वराह मिहिर का द्वेष बढा । मरकर व्यंतर बने । जैन संघ में मरकी फैलाई । इस उपद्रव को दूर करने के लिये श्री भद्रबाहू स्वामी ने यह सूत्र रचा और संघ को मुखपाठ करने को कहा । इस सूत्र के पाठ से वह उपद्रव शांत हो गया । यह सूत्र चैत्यवदन में स्तवन के स्थान पर और नव स्मरण में भी बोला जाता है । इसमें अनेक मंत्र रहे हुए हैं । यह सूत्र मूल पाँच गाथा का ही है, ज्यादा गाथावाला पीछे से बना हुआ है ।

जयवीयराय - प्रणिधान सूत्र

जय वीयराय ! जग-गुरु । होउ ममं तुह पभावओ भयवं ।
भव-निव्वेओ मग्गाणुसारिआ इट्ठफलसिद्धी ।।१।।
लोग-विरुद्ध-च्चाओ, गुरुजण-पूआ परत्थकरणं च ।
सुहगुरु-जोगो तव्वयण - सेवणा आभवमखंडा ।।२।।
वारिज्जई जई वि नियाण - बंधणं वीयराय ! तुह समये ।
तह वि मम हुज्ज सेवा, भवे भवे तुम्ह चलणाणं ।।३।।
दुक्खखओ कम्मखओ, समाहिमरणं च बोहिलाभो अ ।
संपज्जउ मह एअं, तुह नाह ! पणाम करणेणं ।।४।।
सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारणम् ,
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयति शासनम् ।।५।।

--: शब्दार्थ :--

जय : जयवंता वर्तो
वीयराय : हे वीतराग..! हे राग द्वेष रहित महापुरुष
जग-गुरु : हे जगत गुरु, हे विश्वके गुरु
होउ : हो
मम : मुझे
तुह : तुम्हारे
पभावओ : प्रभाव से, सामर्थ्य से
भयवं : हे भगवान
भव-निव्वेओ : भव-निर्वेद, संसार पर से वैराग्य
मग्गाणुसारिआ : (मार्गानुसारिता) मोक्षमार्ग का अनुसरण
इट्ठफल-सिद्धि : मनोवांछित फल की प्राप्ति
लोग-विरुद्धच्चाओ : लोक विरुद्ध कार्य का त्याग, लोग निन्दा करे ऐसी प्रवृति का त्याग
गुरुजण-पूआ : गुरुजनो की पूजा, धर्माचार्य तथा मातापितादि पूज्यों के प्रति पूरे पूरा विनय
परत्थकरणं : परोपकार करना, दूसरों का भला हो ऐसी प्रवृति करना
सुहगुरु-जोगो : उत्तम गुण वाले गुरु का परिचय
तव्वयण सेवणा : उनके वचनानुसार चलना
आभवं : जहाँ तक संसार में परिभ्रमण करना पडे वहां तक
अखंडा : संपूर्ण, पूरी पूरी
वारिज्जइ : निषेध किया है, ना कही है
जइ वि : जो कि
नियाण-बंधणं : नियाणा बांधना धर्मानुष्ठान के फल प्राप्ति की अभिलाषा
तुह : तुम्हारा
समअे : शास्त्र में, आगम में, प्रवचन में
तह वि : तो भी
मम : मुझे
हुज्ज : होना
सेवा : सेवा, भक्ति, उपासना
भवे भवे : भवोभव के लिये
तुम्ह : तुम्हारे
चलणाणं : चरणों की
दुक्ख-क्खओ : दुःख का नाश
कम्मखओ : कर्म का क्षय
समाहि-मरणं : शांति पूर्वक का मृत्यु
च : और
संपज्जउ : प्राप्त हो
मह : मुझे
अेअं : ये
तुह : तुम्हें
नाह : नाथ
पणाम करणेणं : प्रणाम करने से, नमस्कार करने से
सर्व-मंगल : सर्व मंगल में
मांगल्य : मंगलरुप
सर्व कल्याण : सर्व कल्याणों के
कारणं : कारणभूत
प्रधानं : श्रेष्ठ
सर्व धर्माणां : सर्व धर्मो में
जैनं : जैन
जयति : जय पाता है
शासन : शासन, प्रवचन

जय-वीयराय

अर्थ - हे वीतराग प्रभु, हे त्रिलोक के नाथ, जयवंता हो, हे भगवान आपके सामर्थ्य से मुझे संसार के प्रति वैराग्य प्रगट हो, मोक्षमार्ग पर चलने की शक्ति प्राप्त हो और मनवांछित फल की प्राप्ति हो। १

हे प्रभु, लोगों के द्वारा निंदित कार्यो का त्याग, धर्माचार्य तथा माता-पिता आदि पूज्यों के प्रति पूरेपूरा आदरभाव, अन्य के हित की प्रवृति, तथा सद्गुरु उत्तम गुणवाले गुरु का परिचय तथा उनके वचनानुसार चलने की शक्ति ये सब जब तक जन्म मरण के फेरे करने पडे तब तक अखंडरुप से प्राप्त हो....२

हे वीतराग, आपके प्रवचन में (शासन में) जोकि नियाणा याने धर्मानुष्ठान के फल की प्राप्ति की अभिलाषा रखने का मना किया है, तो भी मैं ऐसी अभिलाषा करता हूं की हर एक भव में तुम्हारे चरणों की सेवा करने का योग मुझे प्राप्त हो ३

हे नाथ, आपको प्रणाम करने से दुःखो का नाश, कर्मका क्षय, समाधि पूर्वक मृत्यु और सम्यगदर्शन की प्राप्ति, मोक्षमार्ग के साधनो का लाभ यह सब मुझे प्राप्त हो ४

सर्व मंगलो में मांगल्यरुप, सर्व कल्याणों के कारणरुप और सर्व धर्मो में श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन जयवंता है।

इस सूत्र से वीतराग देव के पास मोक्ष दिलाने वाली ऐसी श्रेष्ठ भवनिर्वेद आदि तेरह वस्तु की याचना की गई है।

अरिहंत चेइयाणं - चैत्यस्तव सूत्र

अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं ।
वंदण-वत्तियाए, पूअण-वत्तियाए,
सक्कार-वत्तियाए, सम्माण - वत्तियाए
बोहिलाभ - वत्तियाए, निरुवसग्ग - वत्तियाए,
सद्धाए मेहाए धिईए धारणाए
अनुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं ।।

--: शब्दार्थ :--

अरिहंत चेइयाणं : अर्हत चैत्यो का
करेमि : करता हूँ, करने को इच्छुक हूँ
काउस्सग्गं : कायोत्सर्ग
वंदण : वंदन के
वत्तिआअे : निमित्तसे
पूअण : पूजन के
वत्तिआअे : निमित्त से
सक्कार : सत्कार के
सम्माण : सन्मान के
बोहिलाभ : बोधि लाभ के
बोहिलाभ : बोधि लाभ के
निरुवसग्ग : निरुपसर्ग के
सद्धाए : श्रद्धा से
मेहाए : बुद्धि से
धिइए : धृति से
धारणाए : धारणा से
अणुप्पेहाए : अनुप्रेक्षा, तत्वचिंतन से
वड्ढमाणीए : बढती हुई, वृद्धि पाती
ठामि : करता हुं
काउसग्गं : कायात्सर्ग, काया के व्यापार के त्याग को

अरिहंत चेइयाणं - चैत्यस्तव

अर्थ - अरिहंत-चैत्यों की, अर्हत-प्रतिमाओ की आराधना के लिये मैं कायोत्सर्ग करने के लिये इच्छुक हुं.... १

वंदन के निमित्त से, पूजन के निमित्त से, सत्कार के निमित्त से, सन्मान के निमित्त से, बोधिलाभ-सम्यगदर्शन के निमित्त से, उपसर्गरहित मोक्ष के निमित्त से ।..... २

(उपरोक्त छः निमित्त किस प्रकार से करना ये बताते है)

बढती हुई श्रद्धा से, बुद्धि-प्रज्ञा से, स्थिरता से, स्मृतिधारणा से और तत्व चिंतन से मैं कायोत्सर्ग (काया के व्यापार का त्याग) करता हूं । इस सूत्र से अरिहंत चैत्यो को वंदनादि निमित्त से कायोत्सर्ग करने को कहा है, इसलिये इसे चैत्यस्तव भी कहते है ।

पश्चात ''अन्नत्थ'' बोल कर एक नवकार का कायोत्सर्ग करना नवकार का कायोत्सर्ग पार कर प्रगट नवकार बोल कर कोई भी एक स्तुति् (थोय) बोलना ।

थोय - मेरे दिल में जिनदेव [२] प्यारा, आकर करो मुझे कर्म न्यारा

कर्मो करके दुःख सहे अपारा, बनो प्रभुजी दुःख मुक्ति कारा....१

खमासमण देकर प्रभु भक्ति का आनंद लेकर प्रभुजी को पीठ न आये इस तरह जयणा पूर्वक जिनालय में से बाहर निकलना

[२] यहाँ किसी भी भगवान का नाम बोल सकते है ।

श्रावक किसे कहें ?

(श्रावक के २१ गुण)

६. पापभीरुता

इहपरलोगोवाओ संभावेतो न वट्टई पावे ।
बीहइ अयसकलंका, तो खलु धम्मारिहो भीरु ।।

पापभीरु मानवी,

आलोक परलोक के कष्टोंका विचार करता है....

अपयश के कलंक से भयभीत होता है.....

अतः वह पापकर्म में प्रवर्तता नहीं है.....

इसीलिये पापभीरु मनुष्य धर्म करने के लिये योग्य है । भय तो सतत मनुष्य के पीछे पड़ा है । कभी चोर का भय सताता है....

कभी मौतका भय सताता है । कभी अपयश का भय सताता है.....कभी दुःख का भय सताता है, पर क्या हमें कभी पाप का भय सताता है ?

पाप करते हुए कांप उठें कि मेरी आत्मा का भवांतर में क्या होगा ?

चोरी करनेवाले चोर को भी यदि चोरी करते करते मेरी चोरी पकडी गई तो क्या होगा ? ऐसा विचार आ जाय तो कदाचित् वह चोरी करना छोड दे ? क्योंकि चोरी करते पकडा जाय तो इस भव में अपयश मिले, दंड मिले । यह तो प्रत्यक्ष फल दिखाई देता है, पर पापभीरु आत्मा को आत्मा का परलोक में क्या होगा इसका भी विचार होता है ।

प्रभु महावीर के समय की बात है -

राजगृही नगरी में कालसौरिक कसाई रहता है । उसे हररोज पांच सौ पाडे मारने का नियम था । धर्मी जीवों को धर्म करने में आनंद आता है, जब कि पापी जीवों को पापकर्म बांध ने में हि मानव जीवन की सफलता दिखाई देती है ।

सभी धर्मोंका मान्य सिध्दान्त है - '' सुख देनेसे सुख मिलता है, दुःख देने से दुःख मिलता है'' ।

संपूर्ण जीवन में अनेकानेक जीवोंकी हत्या कर आनंद मनाया है, अब जीवन के अंतिम पल नजदीक आये है, तब शरीर रोगों से घिर गया है । निरोगी काया जीवदया के पालन से मिलती है । जीवहिंसा से रोगों से घिरी काया मिलती है । हररोज मस्तीमें पांच सौ पाडों को मारनेवाले कालसौरीक ने आज ''बचावो-बचावो'' की चिल्लाहट मचायी है । चारों बाजूसे कांटे भोंकने जैसी पीडासे विव्हल है । दुसरों को पीडा पहुँचाने वाले प्रायः खुद पीडा सहन करने में कमजोर होते है । कालसौरीक से वेदना सहन नहीं होती । उसने चीख-चिल्लाहट मचा रखी है ।

कालसौरिक का पुत्र सुलस पिता की असह्य वेदना देख रहा है । पिताजी को वेदना से मुक्त करने का जैसे जैसे प्रयत्न करते है वैसे वैसे वेदना बढती जा रही है । सुलस किंकर्तव्यमूढ बन गया है । अंत में सुलसने अपने मित्र अभयकुमार से बात की, और कहा '' मेरे पिता को शांति मिले ऐसा कोई उपया बतावो'' ।

अभयकुमार क्षणभर परिस्थिति का विचार करते है, फिर कहते है - '' मित्र सुलस ! संसार का स्वरुप विचित्र है । कर्म की गति अकल है । परंतु हम जैसा कर्म करते है, वैसा फल इस भवमें और परभव में मिलता है । तेरे पिता कसाईका धंधा करते थे । हररोज अनेक जीवों की हिंसा से उन्होने तीव्र पापकर्म उपार्जन किया है । उनकी आत्मा ने दुर्गतिका आयुष्य बाँध लिया है । अतः ऐसी परिस्थिति का निर्माण हुआ है ।''

''अब तु उन्हें शाता देने का जितना प्रयास करेगा उन्हें अशाता ही प्राप्त होगी । अतः उनके लिये तुं अब विपरित प्रयोग कर । उनके लिये प्रतिकूल दिखते उपचार

करने से उन्हें शाता मिलेगी ।''

''उनके शरीरपर दुर्गंधी पदार्थों का विलेपन कर, उन्हें मुलायम नहीं पर कांटोवाली शय्या पर सुला, उन्हें नापसंद चीजें खिलाना शुरु कर । ये सब उन्हें शाता देगा ।''

सुलस ने अभयकुमार की सलाह मुजब उपचार किये तो सचमुच कालसौरीक को शाता मिली ।

सुलस का मन चिंतनमें चला गया '' ये मैं क्या देख रहा हूँ ? ये तो पाप के प्रत्यक्ष इस भवमें दिखाई देनेवाले फल है । परलोक में दुर्गति निश्चित है । तो वहाँ कितने दीर्घावधि के लिये दुःख भोगने पडेंगे ? भाव बुरे तो भव बुरा और भव बुरा तो भाव बुरे यह चक्र चालू होगा तो इसका परिणाम क्या आयेगा ? नहीं-नहीं मुझे दुर्गति में जाना नही है । ना ना मुझे दुर्गति में ले जाय ऐसे पापकर्म मुझे करना नहीं ।''

कालसौरीक का आयुष्य पूर्ण हुआ । पाप का फल भोगने वह सातवी नरक गति में पहुँच गया । एक एक करते बारह दिन बीत गये, स्नेह संबंधी जमा हुए । पिताका धन एवं धंधे को संभालने का मसविरा दिया । परंतु सुलस पिता के धन को स्पर्श करने को तैयार नहीं हुआ । पिता के धंधे पर बैठने से स्पष्ट इन्कार कर दिया । ''मैने पिताजी का जीवन और मरण दोनों देखा है । मुझे मेरा मरण बिगाडना नहीं सुधारना है ।'' घर के सब सुलस के साथ पाप में भागीदार होने के लिये तत्पर हुए । अब क्या हर्ज है ? सब पूछने लगे ।

सुलस ने बाजु में पडी हुई कुल्हाडी उठा कर पैर पर प्रहार किया, पैर में घाव हुआ, खून निकलने लगा, वेदना होने लगी, सुलस कहता है ''अब सभी इसमें से भाग लो'' । तब सब एक दुसरे के मुख को देखने लगे । कोई भी अन्य की पीडा में भाग ले नहीं सकता । सुलस सब को सत्य धर्म समझाता है और पापसे हटाता है । और खुद परमात्मा महावीरस्वामी ने बताया हुआ श्रावक धर्म स्वीकारता है ।

सुलस ने पाप के फल देखे और जाने -

पाप के फल देखकर भयभीत बना -

पापभीरु बना तभी धर्म पा सका -

जो कोई भी धर्म पाये वे पहले पापभीरु बने । हमें धर्म पाना है तो पापभीरु बनना पडेगा ।

जीवन में से पापभीरुता जब विदा होती है, तब धीरे धीरे पापप्रवृत्ति बढ़ती जाती है । पाप के संस्कार मजबूत बनते जाते है । पापक्रिया करने से जीव पीछे नहीं हटता । ऐसे जीव धर्म कहाँसे पा सकेंगे ?

आज हमारे जीवन में से पापभीरुता गायब हो गयी है । आज श्रावक (१) शराब की महेफिल मना सकता है । आज श्रावक कुल में जन्मा शहजादा नॉन-वेज मजे से खाता है । आज की श्राविका अपने कुक्षी में अवतरित कन्या को ठंडे कलेजे से मृत्यु के घाट उतार सकती है । श्रावकों के जीवन में पग पग पर विवाह तोडना, पुनः विवाह करना बढ़ने लगा है । श्रावकों के कुल व्यसनों की गुलामी और भोगविलास में चकचूर बने है । इस सब परिस्थिति का शांतिपूर्ण चिंतन किया तो एक सत्य सामने खडा रहता है -

''वीतराग परमात्मा ने प्ररुपित किये हुऐ धर्म से तो हम कोसों दूर है, परंतु मानव बनने के लिये जरुरी गुणों की भी हमारे जीवनमें बहुत कमी है ।''

जहाँ पाप का भय हो वहाँसे पाप दूर रहता है ।

जहाँ पाप का भय हो वहाँ धर्म का प्रवेश है ।

पर जहाँ पाप का भय नहीं वहाँ पाप का वास होता है ।

जहाँ पाप का प्रवेश है वहाँ धर्म का प्रवेश संभवित नहीं ।

७. अशठ -

असढो पर न वंचइ, वीससवणिज्जो पसंसणिज्जोय ।
उज्जमई भावसारं, उचिओ धम्मस्स नेणेसो ।।

जो अन्य को ठगे... माया करे वह शठ ।

परंतु जो अशठ होता है, वह अन्य को कभी भी ठगता नहीं । जो किसी को कभी भी ठगता नहीं..

धूर्तता नहीं करता वह विश्वास करने योग्य है । विश्वासु मनुष्य प्रशंसा करने योग्य है ।

ऐसा व्यक्ति हृदय के भाव सहित धर्म मार्ग में प्रवर्तता है और इसी कारण धर्म करने के लिये लायक होता है ।

अनादि कालसे संसार में रखडते हुए अपनी आत्माने दुनिया के जीवों को ठगने का काम किया है । जहाँ ठगने के धंधे के संस्कार मजबूत हो वहाँ धर्म की संभावना कहाँसे हो ? सब जीवों को ठगकर अपना स्वार्थ साधनेमें अत्यंत कुशल बने हुए इस जीव को आत्मकल्याण की भावना किस तरह जागृत हो सकती है ? आत्मकल्याण की भावना को साकार करने के लिये धर्म की आवश्यकता है । धर्म को पाने के लिये सरलता की आवश्यकता है ।

जैसे जैसे शिक्षण बढ़ा है वैसे वैसे मनुष्यने अपनी सहजता गँवा दी है । उसके मुखौटे बदलते जाते है । हृदय में एक और वाणीमें दुसरा ऐसे वर्तन से उसने सफलतापूर्वक (?) अनेकों को ठगा है, अनेकों को लूटा है । उसे क्षणिक लाभ जरुर हुआ होगा परंतु ऐसे करते हुए उसने अपनी आत्मा को ही ठग लिया है ।

दुनिया में अविश्वास का साम्राज्य निर्माण हो गया है । वर्तमान समय की ही यह बात है -

सख्त गर्मीका समय था, दोपहर का सूर्य आग उगल रहा था... तभी एक गाडी स्टेशनपर आकर खड़ी हुई... सब फेरीवाले अपनी चीजें बेचने पुकार लगाने लगे... दौडधूप मची थी, तभी वहाँ एक गरीब औरत पानी की मटकी लेकर दौड रही थी । ठंडा पानी, मीठा पानी, लो भाई लो । औरत की आवाज पर एक सेठने खिडकी के बाहर नजर की । बहन को अपने पास बुलाकर पानी मांगा । गरीब स्त्री के पैरों में जोर आया, जल्दी जल्दी पहुँचकर ठंडा पानी दिया, एक ग्लास, दो ग्लास, तीन ग्लास, सेठ पी गये ।

बहन ने कहाँ ''सेठजी गरीब हूँ दया करना ।''

शेठने कहाँ ''दुसरे तुझे दस पैसे देते होगे, ले मैं तुझे आठ आने दूँ, जल्दी आठ आने वापिस कर ''।

आठ आने मिलेगे इस आनंद में झट छुट्टे गिनकर आठ आने सेठ के हाथ पर धर दिये । सिटी बजी गाडी चलने लगी, गरीब बहन ने रुपिया लेने हाथ आगे किया, पर सेठ की देने की दानतही न थी, गाडी ने गति बढाई, बहन गिडगिडाने लगी, आजूबाजूवाले सेठ की और देखने लगे, सेठ ने खिस्से में से रुपिया निकालकर दिया, पर हाय ! वह सिक्का खोटा था ।

बहुत से पैसेवाले लोग इस तरह गरीबों को देने के बहाने ठगते है । जहाँ गरीबों के प्रति भी दया नहीं, सामान्य चार आठ आने के लिये भी ऐसी धूर्तता होती है तब ऐसी व्यक्तिओं पर विश्वास कौन रखेगा ?

आज दुनिया में करोडो कौभांड होते हैं, उसके पीछे शठता ही कार्यरत है । किसी भी तरह, किसी को भी ठगकर हमें मालदार बनना है । ऐसे जीवों के जीवन में न्यायनीति सदाचार की अपेक्षा कहाँ से रख सकें ?

ऐसे अनेकानेक भव कर हम यहाँ इस मानव भव में आये हैं । यदि इस मिले हुए मानव भव को सफल करना है तो धर्मरत्न प्राप्त करना होगा । धर्मरत्न प्राप्त करने के लिये पात्रता प्राप्त करनी होगी । पात्रता मिलाने के लिये अशठता का स्वामी बनना पडेगा ।

धर्मप्रेमी व्यक्ति को जीवनमें नुकसानी कबूल है, हाँ कबूल है, मृत्यु स्वीकार्य है - पर वह सदा शठता से डरता है । दूर भागता है, स्वयं के जीवन को अशठ बनाने के लिये सदा पुरुषार्थ करता है । हलके माल की उंचे माल के साथ वह भेळसेळ करता नहीं, नकली दवाईयाँ वह बेचता नहीं, किसी की मजबूरी लाचारी का वह फायदा उठाता नहीं ।

घर भरकर वह हाथ उँचे नहीं कर देता । ऐसे न्याय-नीति संपन्न जीवों को इहलोक से परलोक ज्यादा प्यारा लगता है । संपत्ति से सदगुण प्रिय होते है । संपत्ति के बजाय सद्‌गुण कीमती होते है । धन नहीं अपितु धर्म सन्माननीय होता है ।

जाँचो अपने खुद के जीवन को । हम कहाँ है ?

कैसा जीवन बिताते है ? कैसा जीवन जीना चाहते है ? कैसे जीवन के कट्टर पक्षपाती है ?

वे थे धर्मिष्ठ, कपडे के व्यापारी -

एकबार उन्होने मुनिम को कस्टम से माल छुडाने भेजा । मुनिम था नया, उसे लगा सेठ को मेरी चालाकी, होशीयारी बताऊँ, उसने चालाकीसे काम लिया । माल छुडाकर सेठ के पास हाजिर हुआ ।

सेठ को जकात की रसीद दी । सेठने रसीद पर नजर डाली, माल के गठ्ठेपर नजर डाली, उन्हे कुछ भूल लगी । उन्होने मुनिम को बुलाया, पूछा ''मुनिमजी ! माल कितना छुडाकर लाये ? '' जवाब मिला ''सेठजी सभी माल छुडाकर लाया हुँ ।'' सेठ ने प्रतिप्रश्न किया '' पर जकात तो बहुत कम भरी है, ऐसा कैसा हुआ ? ''

मुनिमजी वट से बोले '' शेठ ! ऐसे काम में कहना न पडेगा । मैं होशियार हूँ, गठ्ठे में माल है रेशमी कपडेका मैने बताया सूत का कपडा है । अतः जकात कम भरनी पडी, हमें पांचसौ रुपयों का लाभ हुआ ।''

शेठ तुर्त ही गादी से उठ गये । मुनिम को साथ लेकर कस्टम ऑफीस पर आये । मुनिम की शठता बतायी और बाकी रही ज्यादा की रक्कम भर दी और अधिकारियों की क्षमा माँगी ।

फिर मुनिमको कहा ''ऐसी धूर्तता करनी होती तो मैं आज सोने के महल में रहता, परंतु इतना याद रख, किसी को ठग कर खडे किये हुए सोने के महल में न शांति रहती और न समाधि रहती है । वहाँ सतत रहता है क्लेश और अशांति । धूर्तता एवं ठगी का एक भी पैसा मेरे घर में आयेगा तो मेरे सुखी संसार को जला देगा । आज तेरी भूल को माफ कर देता हूँ, पर ऐसी भूल आइंदा कभी हुई तो नोकरी में से निकाल दिया जायेगा ।

मुनिम ने अपने नये सेठ की शुद्ध नीति को वंदन किया ।

आज की दुनिया के पास सब कुछ है । बहुत है परंतु शांति नहीं है । इसका एकमात्र कारण है की उसके पास न्यायनीतिपूर्ण कमाई नहीं है ।

चमत्कार कर, माया कपट कर, दुनिया के जीवों का मनोरंजन करने वाले अन्य जीवों को आकर्षित करनेवाले बहुत देखने को मिलते है । परंतु परमात्माकी आज्ञानुसार चलनेवाले और आत्मकल्याण साधनेवाले जीव दुर्लभ है, उंगलियों पर गिने जाये इतने है । हमारा नंबर इसमें आने के लिये हमें अशठताका स्वामी बनने की आवश्यकता है ।

८. दाक्षिण्यता -

उवयरई सुदरिकन्नो, परेसिमुज्झिय सकज्जवावारो
तो होई गभवक्को, णुवत्तणीओ य सव्वस्य ।।

श्रावक का जीवन गुणों से शोभायमान होता है, ऐसे गुणों की हारमाला का विचार करते करते आज हमारे श्रावक के आठवें गुण को समझने का प्रयत्न करना है ।

श्रावक का आठवां गुण है ''सुदाक्षिण्यता'' ।

दाक्षिण्यता के साथ ''सु'' जोडकर उसकी महत्ता को बढ़ाने में आई है । परोपकार करना यह मानवमात्र का कर्तव्य है । कोई आदमी हमारे पास आकर अपनी समस्या पेश करे, कुछ माँगे तब उसकी समस्या हल करना, उसकी प्रार्थना पूरी करना, इच्छा की पूर्ति करना, उसके लिये यथाशक्ति प्रयास करना, यही तो दाक्षिण्यता गुण का महत्व है ।

दाक्षिण्यता गुण से अलंकृत व्यक्ति सदा अपने कार्य छोडकर भी दूसरे का परोपकार करने को तैयार रहता है । किसी की भी प्रार्थना को वह कभी भी ठुकराता नहीं ।

दाक्षिण्यता के गुण से अलंकृत व्यक्ति को ही संत भी धर्म मार्ग में आगे बढने की प्रेरणा देते है । बडे भी उन्हें ही हिताशिक्षा देते है । इस दाक्षिण्यता के गुणसे जीव अन्य गुणोंकी भी प्राप्ति कर सकता है । जीवन में आगे बढ़ सकता है । धर्म में भी आगे बढ़कर आत्मकल्याण की साधना करता है ।

स्थूलीभद्र का छोटा भाई श्रीयक्.....

धर्म पर जबर्दस्त श्रद्धा परंतु तप करने में कायर,

मन में भावना उँची पर शरीर साथ नहीं देता था ।

श्रीयक् की यक्षा, यक्षदिन्ना आदि छह बहनों ने दीक्षा ली थी । एकबार श्रीयक् भगिनी,साध्वीयों को वंदन करने गये । बहनों ने सोचा आज श्रीयक् को तप करायें । धीरे धीरे उसे तप करने की आदत पड जायेगी ।

यक्षा साध्वीजीको वंदन करने आये हुए श्रीयक् को साध्वीजी ने नवकारसी की प्रेरणा दी । अभी थोडे समय में नवकारसी आ जायेगी, श्रीयक् बहन साध्वीजी की बात टाल न सका, क्योंकि उसके पास दाक्षिण्यता का गुण था ।

यक्षा साध्वीजी के पास श्रीयक् ने नवकारसी का पच्चखाण ले लिया, वह वहाँसे आगे बढा । यक्षदिन्ना साध्वीजी के पास आया । वंदन किया, सुखशाता पुछी, बहन साध्वीजी ने धर्मचर्चा करने बैठा दिया । थोडा समय व्यतीत हो गया । यक्षदिन्ना ने श्रीयक् से कहा ''भाई अभी तो नवकारसी आ गई । थोडीदेर में पोरिसी आ जायेगी, पोरिसी का ही पच्चखाण ले ले ।''

दाक्षिण्यता के गुण के कारण उसने मन में सोचा ''मेरी बहन साध्वीजी के मन में मेरे आत्मकल्याण की कितनी उत्कृष्ट भावना है, मुझे उनकी बात माननी चाहिये । उसने पोरिसी के पच्चखाण का स्वीकार कर लिया ।

इसी तरह आगे बढते तीसरी बहन ने तप बढाने की प्रेरणा दी । तप का महत्व समझाया । तप से होनेवाली कर्मनिर्जरा और तप से मिलनेवाली सद्गति का रहस्य समझाया । श्रीयक् के दाक्षिण्यता का गुण उसे आगे आगे के पच्चखाण का स्वीकार कराता गया ।

कभी नवकारसीका भी पच्चखाण न करनेवाले श्रीयक् ने आज नवकारसी, पोरिसी, साढपोरिसि, पुरिमट्ट, अवड्ढ के पच्चखाण के साथ आगे बढते उपवास के पच्चखाण का स्वीकार कर लिया ।

नहीं, नहीं यह केवल बाह्य तप न था । उसमें आंतरिक भाव थे । परमात्मा के शासन प्रति अतूट श्रद्धा थी । उंची चढती आकाश को छूने वाली परिणाम की धारा थी ।

रात को स्वास्थ बिगडा । परंतु परिणाम की धारा उंची थी । पूज्य साध्वीजी भगवंत की प्रेरणा से उपवास पूर्ण हो जाने का अनोखा आनंद था । आत्मा जागृत था । शुभ भावना से सद्गति के आयुष्य का बंध कर लिया ।

ऐसा नहीं लगता कि सद्गति के आयुष्य बंध के पीछे दाक्षिण्यता का गुण रहा हुआ है ।

जिसके जीवन में दाक्षिण्यता का गुण नहीं, किसीने बताई हुई बात को स्वीकारने की तैयारी नहीं, उसे हितशिक्षा देने कौन तैयार होगा ? अर्थात् कोई भी तैयार नहीं होगा ।

देखने के लिये आँख खुली रखनी ही पडती हैं, सुनने के लिये कान खुल्ले रखने ही पडते हैं, खाने के लिये मुँह खोलना ही पडता है । उसी तरह जीवन के विकास के लिये मिलते हुए मार्गदर्शन और विनती, प्रार्थनाओं को स्वीकार करनाही पडता है । सुदाक्षिण्यता के गुण को जीवन में स्थान देना ही पडता है ।

बडों का मार्गदर्शन, सूचन जिसे अच्छा न लगता हो एसे जीवों का विकास संभवित नहीं । उसकी विकास यात्रा योग्य मार्गदर्शन के अभाव में बीच में ही असमय अटक जाती है ।

माघ कवि के पिता अतिशय होशियार थे । उनके हृदय में एक भावना थी ''मेरे पुत्रको मुझे हिन्दुस्तान का प्रथम पंक्ति का कवि बनाना है ।''

इस भावना के कारण पुत्र के प्रत्येक रचना में से कुछ न कुछ भूल निकालते ही । उनकी भावना पुत्र को श्रेष्ठ कवि बनाने की थी । भूल निकालकर फिर से आगे बढने के लिये उत्साह देते, प्रेरणा देते ।

परंतु पुत्र के पास दाक्षिण्यता के गुण का अभाव था । उसकी इच्छा पिता के मुख से अपनी प्रशंसा सुनने की थी । पर पिता तो भूलें ही निकालते जाते थे । पुत्र का धैर्य खत्म हुआ । पिता के मुख से प्रशंसा सुनने को उत्सुक पुत्र ने एक जाल बिछाई । अपने ही काव्य की प्रत को धुँआ एंव मिट्टी से मलीन कर पिता को थमाई । ''यह

कोई प्राचीन काव्य प्रतीत होता है, देखो तो तुम्हें कैसा लगता है ?''

पिताजी द्वारा उसकी बहुत प्रशंसा किये जाने के बाद कवि ने बता दिया, कि यह तो मेरा ही काव्य है, शिशुपाल वध'' ।

पिताश्री चौंक उठे ''ऐसा कपट करने का कारण?''

''क्योंकि मुझे आपके मुख से मेरी प्रशंसा सुननी थी?'' माघ कवि ने जवाब दिया ।

पुत्र की बात सुनकर पिताजी ने कहा ''बेटा अब मुझे तेरा भविष्य उज्ज्वल नहीं दिखाई देता । ''

जहाँ दाक्षिण्यता नहीं, ज्येष्ठ जनों के मार्गदर्शन का स्वीकार नहीं वहाँ विकास की संभावना नहीं रहती ।

ऐसे जीवों को न तो कोई मार्गदर्शन देता है, न तो ऐसों का कोई अनुकरण करता है । ऐसे जीव धर्म का अनुकरण कैसे करें , कैसे आचरण में लाये ?

जहाँ अपने विकास का ही खयाल न हो वहाँ दूसरे के कल्याण की, दुसरे को सहायता करने की परोपकार करने की लगनी कहाँ से जागे ?

अनादि काल के भवभ्रमण में क्या हमें अरिहंत नहीं मिले होंगे ? क्या अरिहंत की वाणी नहीं मिली होगी ? जीवन को जीतने का सुनहरा मौका मिला ही नहीं होगा ? हमें अयोग्य भूलोंसे भरे हुए मार्गसे वापिस कराकर सन्मार्ग पर चढानेवाले गुरुभगवंत नहीं मिले होगे ?

नहीं नहीं ऐसा तो अनेकवार मिला होगा, परंतु जब मिला तब उसके मूल्य को जाना नहीं, हमने महापुरुषों के मार्गदर्शन को दाक्षिण्यता के गुण के अभावके कारण स्वीकारा ही नहीं, हमारे जीवन में मौजूदा दुर्गुणों को, दोषों को, निकाल फेंकने का कोई प्रयास किया ही नहीं । अंतः आज भी संसार में भ्रमण कर रहे है ।

दुर्गति को, दुःखों को, दोषोंको दूर कर सद्गति, सुख एवं सद्गुणों को अंकित करने के लिये हम सब को सुदाक्षिण्यता गुण का स्वीकार करना ही उचित है । आयें, इस गुणको जीवन में स्वीकार कर अनादि को हार की बाजी को जीत में पलटा दें ।

बडों के तरफ से मिले हुए अनुभव के अमृत को स्वीकार करना है और हमारे पास अपेक्षा से प्रार्थना करने आनेवाले व्यक्तिकी प्रार्थना स्वीकार कर स्व-पर के विकास के द्वार खोलना है ।

इस भव में ही यह सुनहरा मौका सहजता से मिला है । भविष्य में ऐसा मौका मिले ना मिले, हम जानते नहीं । मौके की दस्तक द्वार पर पडी है, तब तकदीर के द्वार खोल देने में विलंब क्यों ?

सुदाक्षिण्यता के गुण से जीवन को अलंकृत कर जीवन में रहे हुए दोषों को दूर कर, सद्गुणों को अंगीकार कर अपने गुणवैभव की ऋद्धि में वृद्धि करें ।

जीव-विचार

पंचेन्द्रिय जीवों में क्षण क्षण दुःख भोगते नरक के जीवों की बात बताने के पश्चात उनसे कम दुःख वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की पहचान कराते हुए कहते है -

''जलचर थलचर खयरा,
तिविहा पंचिंदिया तिरिक्खाय,
सुसुमार-मच्छ-कच्छव
गाहा मगराय जलचारी ।।२०।।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के तीन भेद है - १) जलचर २) स्थलचर ३) खेचर

जलचर याने पानी में रहनेवाले, स्थलचर याने जमीनपर रहने वाले और खेचर याने आकाश में उडने वाले ।

बडे मगरमच्छ (सुंस) मछली (मत्स्य) कछुअे, घडियाल (गाहा) और मगर वगैरह जलचर प्राणी हैं ।

पानी में दूसरे भी छोटे बडे विविध आकार के मत्स्य तथा अन्य प्राणी होते हैं । जैन शास्त्रानुसार कंकण तथा कवेलु को छोडकर सभी आकार के मत्स्य पानी में होते है, उनमें से कितने मत्स्य प्रभुजी की प्रतिमा के आकार के होते है । जिनको देखकर अन्य जलचर प्राणी सम्यग् दर्शन पा सकते हैं । और कितनेक जलचर प्राणी जातिस्मरणादि ज्ञान के द्वारा विरति भी स्वीकार करते हैं ।

प्रभु प्रतिमा के संस्कार उन जीवों में कितने गहरे अंकित हुए होंगें की ऐसी आकृति को तिर्यंच भव में भी देखने मात्र से जीव मोह की निद्रा में से जागकर समकित और जातिस्मरण के द्वारा देशविरती पाँचवे गुणस्थानक तक आगे बढ जाते हैं । क्या हमने मनुष्य जीवन पाकर भी ऐसे संस्कार दृढ करने का कोई प्रयत्न किया है ? चलिये ऐसे प्रयत्न में लग जायें और आगे स्थलचर (जमीन पर रहनेवालें) जीवों के भेदो की जानकारी प्राप्त करें ।

''चउपय उरपरिसप्पा,
भयुपरिसप्पा य थलचरा तिविहा;
गो-सप्प-नउल पमुहा,
बोधव्वा ते समासेणं ।।२१।।

चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प ये तीन प्रकार से स्थलचर, गाय, सर्प, नेवला प्रमुख के दृष्टांतो से संक्षेप में समझना ।

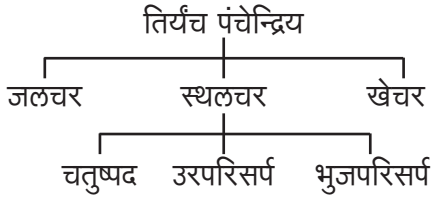

स्थलचर याने जमीन पर चलने वाले तिर्यंच पंचेद्रिंय का विशेष से अभ्यास करने के लिये उनके तीन प्रकार बताते हैं ।

१) चतुष्पद याने चार पैर से चलने वाले जैसे की गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, शेर, सिंह, हरिण वगैरह ।

२) उरपरिसर्प याने पेट से चलने वाले जैसे की- सर्प, अजगर, नाग वगैरह ।

३) भुजपरिसर्प याने भुजा की सहायता से चलने वाले जैसे की नेवला, चूहा, गिलहरी, छिपकली वगैरह ।

इन सभी जींवो का समावेश स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय में होता है । इन सभी जीवों के पास मन है इससे ये सतत शुभ या अशुभ विचारों में होते हैं । यहाँ भी पूर्व भव के संस्कार जीव को शुभ या अशुभ ध्यान की तरफ ले जाते हैं । इस भव में भी धार्मिक निमित्त पूर्व

भव के संस्कारों की सहायता से जीव को उत्थान के मार्ग पर आगे बढा सकते हैं । मूल कलिकुंड तीर्थ का ऐतिहासिक उल्लेख है, उसमें ये बात स्पष्ट होती है । प्रभु पार्श्वनाथ को कुंड सरोवर के किनारे कायोत्सर्ग ध्यान में लीन देखकर एक वन हाथी को जातिस्मरण ज्ञान होता है, हाथी प्रभु पार्श्वनाथ का अभिषेक करके सरोवर में से कमल लाकर अपूर्व भावोल्लास के साथ प्रभु के मस्तक पर चढाता है । शुभ संस्कार में शुभ निमित्त मिले तो शुभभाव और शुभ भव सुलभ बनते हैं । कभी कभी तो शुभ संस्कार और शुभ निमित्त पापी, दुर्गति में रहे जीवों को भी सद्गति में खींच कर ले जाते है । दृष्टि विष सर्प की कही जाती दुर्गती में भी पूर्व के शुभ संस्कार और स्वयं परमात्मा जैसा उत्कृष्ट सद्निमित्त चंडकौशिक को शुभगति की तरफ ले जाते हैं ।

यदि अगर जीवों को शुभ निमित्त न मिलें तो अशुभ ध्यान का भोग बनकर जीव दुर्गति की परंपरा खडी करते हैं । हमारे जीवन में ऐसा कुछ न बने इसके लिये निमित्तों को समझने का प्रयत्न कर हमें ऐसी दुर्गति की परंपरा में न जाना पडे इसके लिये समय रहते जाग जायें ।

जगत के चोगान में रहे विविध प्रकार के जीवों को जानने के प्रयत्न में हमने विकलेन्द्रियों का विचार कर पंचेन्द्रिय जीवों के अंतर्गत अब खेचर नाम से पहचाने जाते आकाश में उडते प्राणीयों का विचार करेंगे ।

खयरा रोमय पक्खी,
चम्मय पक्खीय पायडा चेव ।
नरलोगा-ओ बाहि,
समुग्ग पक्खी वियय पक्खी ।।२२।।

भावार्थ - खेचर जीव रोमसे बने हुए पंखो वाले तथा चर्म से बने हुए पंखो वाले होते हैं । मनुष्य लोक से बाहर समुग्ग पक्षी (उडने पर भी सिकुडे हुए पंखो वाले) एवं वितत पक्षी (बैठने पर भी फैले हुए पंखो वाले) होते हैं ।

खेचर जीव दो प्रकार के होते हैं - १) रोम से बने पंख वाले रोमज कहलाते हैं । उदा. पोपट, मैना, कबुतर, वगैरह

२) चर्म (चमडे) के पंख वाले पक्षी चर्मज कहलाते हैं । उदा. चमगादड वगैरह ।

मनुष्य लोक में यानि अढीद्वीप में पक्षी बैठते हैं तब उनके पंख सिकुडे हुए रहते है और आकाश में उडे तब पंख खुले होते हैं । लेकिन मनुष्यलोक के बाहर सिकुडे हुए पंख वाले जीव बैठते, चलते, या उडते उनके पंख सिकुडे हुए ही रहते हैं और खुले पंख वाले पक्षीओं के पंख बैठते, चलते, या उडते समय खुले ही रहते हैं ।

सव्वे जल थल खयरा,
समुच्छिमा गब्भया दुहा हुंति ।
कम्मा कम्मग भूमि,
अंतरदीवा मणुस्साय ।।२३।।

भावार्थ - समस्त जलचर, स्थलचर, खेचर (पंचेन्द्रिय तिर्यंच) तथा कर्मभूमि, अकर्मभूमि एवं अन्तर्द्वीप में उत्पन्न हुए मनुष्य संमूच्छिर्मम और गर्भज रुप दो प्रकार के होते हैं ।

इस तरह तिर्यंच पंचेद्रिंय के पाँच प्रकार हैं -

१) जलचर जीव २) चुतष्पद जीव ३) उरपरिसर्प ४) भुजपरिसर्पजीव तथा ५) खेचर जीव ।

इन पाँच प्रकार के जीवों के दो दो भेद होते हैं -

१. समच्छिर्मम जीव :- जो जीव गर्भ के बगैर अर्थात जीवों की उत्पन्न होने की योनि प्राप्त होने के साथ ही वहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यंचरुप उत्पन्न हो जाते हैं, वो जीव संमूर्च्छिम जीव कहलाते है । उदा. बरसात गिरने पर तुरंत उत्पन्न हो जाते मेंढक वगैरह ।

२) गर्भज जीव :- जो जीव गर्भ से उत्पन्न होते हैं, वो जीव गर्भज कहलाते हैं ।

इस तरह तिर्यंच पंचेन्द्रिय के दस भेद होते हैं । इन दस प्रकार के जीवों के पर्याप्ता और अपर्याप्ता इस तरह दो-दो भेद गिनते कुल बीस भेद होते हैं ।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के स्थान : तिर्यंच पंचेन्द्रिय तीनों लोक में रहे हुए है, उर्ध्वलोक में मेरुपर्वत के उपर ९०० योजन उँचाई पर पांडुकवन है । उस वन के कुओं, सरोवरों में तिर्यंच पंचेन्द्रिय के स्थान है । तिर्च्छालोक में असंख्य द्वीपों तथा समुद्रो में तिर्यंच पंचेन्द्रिय होते हैं ।

अधोलोक में ९०० योजन से गहरे भागवाले जलाशय और समुद्रो में तिर्यंच पंचेन्द्रिय रहे हुए हैं । उसी प्रकार अधोलोक में मनुष्यक्षेत्र में भी तिर्यंच पंचेन्द्रिय होते हैं ।

मनुष्य

अब मनुष्यों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि स्थान के क्षेत्र की अपेक्षा से मनुष्यों के तीन स्थान है -

१. कर्मभूमि - असि - तलवार, मसि - लेखन, कृषि-खेती, जहाँ असी, मसी और कृषि का व्यवहार हो वह कर्मभूमि कहलाती है, कर्मभूमि प्रंद्रह हैं ।

२. अकर्मभूमि - जहाँ असि,मसि,कृषि का व्यवहार नहीं है वह अकर्मभूमि कहलाती है । अकर्मभूमि ३० हैं ।

३. अंतरद्वीप - जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र और हिमवंत क्षेत्र के बीच में हिमवंत पर्वत है और उसी प्रकार से ऐरावत क्षेत्र और हिरण्यवंत क्षेत्र के बीच में शिखरी पर्वत है । ये दोनों पर्वत पूर्व और पश्चिम लवण समुद्र तक लम्बे हैं । इन दोनों पर्वत के दोनों दिशाओं में दो दो द्रष्ट्रांकार (गजदंताकार) भूमियाँ हैं जो लवण समुद्र में आई हुई हैं । इस प्रकार आठ भूमियाँ हैं, प्रत्येक भूमि पर सात सात द्वीप हैं , जो अंतरद्वीप कहलाते हैं । अंतरद्वीप ५६ है । ये भी युगलिक क्षेत्र है । १५ कर्मभूमि + ३० अकर्मभूमि + ५६ अंतरद्वीप इस तरह कुल १०१ मनुष्य क्षेत्र स्थानभेद से होते हैं ।

नव - तत्व.... (संवर तत्व)

आश्रव यह कर्मो के आने का मार्ग है तो आने वाले कर्मो को रोकना अटकाना, आश्रव के द्वार बंद करना संवर है ।

अनादि काल से शुभ या अशुभ कर्मो का आगमन हमारे जीवन में सतत चालू है । अगर सतत कर्मो का आगमन चालू रहेगा तो भवोभव इसके शुभ अशुभ फल भोगने पडेगें । संसार का परिभ्रमण जिस तरह है उसी तरह चालू रहेगा । जन्म मरण का चक्र चलता ही रहेगा । जब अविरत चलते इस संसारचक्र को अटकाने का, रोकने का विचार आयेगा तभी आश्रव से अटकने का मन होगा । तभी यह संसारी जीव संवर की शरण में आयेगा । थके हुए मुसाफिर का विश्रामस्थल जिस तरह वटवृक्ष है, उसी तरह भवभव से थके इस भवमुसाफिर का विश्रामस्थल संवर है ।

संवर तत्व की स्च्ची समझ जीव को आश्रव में से मुक्त करती है । संवर की तरफ प्रेरणा करके आगे बढाती है ।

अविरति अगर आश्रव है, तो विरति संवर है ।

क्रोध अगर आश्रव है, तो क्षमा संवर है ।

मान अगर आश्रव है, तो विनय संवर है ।

माया अगर आश्रव है, तो सरलता संवर है ।

आईये, संवर को जाने, समझे,स्वीकारे, ज्यों ज्यों संवर की आराधना होगी, त्यों त्यों कर्मो का आगमन कम होता जायेगा । आत्मा की निर्मलता बढती जायेगी, साधना के पथ पर आत्मा वेग से आगे बढेगा, आत्मा एक एक गुणस्थानक आगे बढेगा ।

समिइ गुत्ति परीसह,
जई धम्मो भावणा चरित्ताणि ।
पण ति दुवीस, दस बार,
पंच भेअेहिं सगवन्ना ।।२५।।

संवर तत्व में समिति, गुप्ति, परिषह, यतिधर्म, भावना और चारित्र, पाँच, तीन, बावीस, दश, बारह और पाँच इस तरह (५७) सत्तावन भेद संवर तत्व के है ।

संवर तत्व के सत्तावन भेद बताये हैं । आश्रव से कर्मो का अगर आगमन होता है, तो संवर आने वाले कर्मो को अटकाने की आराधना है । संवर तत्व के ५७ भेद संक्षिप्त में नीचे मुजब है -

समिति	०५
गुप्ति	०३
परिषह	२२
यतिधर्म	१०
भावना	१२
चारित्र	०५
संवर तत्व के कुल भेद	५७

संवर तत्व के सत्तवान भेदों का विवेचन आगे की गाथा में किया गया है ।

समिति - गुप्ति

इरिया भासेसणा दाणे, उच्चारे समिइसु अ ।
मणगुत्ति वयगुत्ति,कायगुत्ति तहेव य ।।२६।।

इर्या समिति, भाषा समिति, ऐषणा समिति, आदानभंडमत्त निक्खेवणा समिति और उच्चार अथवा परिष्ठापनिका समिति ये पाँच समिति हैं तथा मनोगुप्ति, वचन गुप्ति और कायगुप्ति ये तीन गुप्ति हैं ।

समिति याने सम्यग् प्रकार के उपयोग सहित प्रवृत्ति ।

गुप्ति याने सम्यग् प्रकार उयपोग सहित निवृत्ति तथा प्रवृत्ति ।

समिति के पाँच और गुप्ति के तीन प्रकार हैं -

१. इर्यासमिति - इर्या याने मार्ग । मार्ग में उपयोग पूर्वक याने युगमात्र (३।। हाथ) भूमि देखकर शुद्ध निर्जीव मार्ग में चलना वह इर्या समिति है ।

२. भाषासमिति - सम्यक् प्रकार से (हित, मित, प्रिय निर्वद्य) वचन बोलना वह भाषा समिति है ।

३. ऐषणा समिति - आगम में बताये गये ४२ दोष रहित निर्दोष आहार पानी को सम्यग् प्रकार से ग्रहण करना ऐषणा समिति है ।

४. आदानभंड मत्त निक्खेवणा समिति - आदान याने लेना और निक्खेवणा याने रखना, भंड याने पात्र और मत्त याने मात्रक वगैरह जयणापूर्वक, प्रमार्जना करके वस्त्र, पात्र वगैरह लेना रखना वह आदानभंड मत्त निक्खेवणा समिति है ।

५. उत्सर्ग अथवा पारिष्ठापनिका समिति - लघुनीति, वडिनीति, अशुध्द आहार, फटे हुए वस्त्र, तुटे हुए पात्र वगैरह निरुपयोगी उपकरण को विधिपूर्वक त्यागना वह उत्सर्ग अथवा पारिष्ठापनिका समिति है ।

१. मनोगुप्ति - मन को पापकारी अशुभ सावद्य विचारों में से अटकाना और सम्यग् विचारों में प्रवृत करना वो मनोगुप्ति है । यह मनोगुप्ति तीन प्रकार से हैं -

१. मन को अशुभ, पापकारी, सावद्य प्रवृत्ति में से अटकाना वह **''अकुशल निवृति''**

२. मन को शुभ लाभदायी, निर्वद्य प्रवृति में जोडना वह **''कुशल प्रवृति''**

३. मन का संपूर्ण रुप से निरोध, शुभ, अशुभ दोनों प्रवृत्ति में से निवृत्ति यह योगनिरोध रुप मनोगुप्ति है । यही सच्ची मनोगुप्ति है ।

२. वचन गुप्ति - सावद्य पापकारी वचन का त्याग करके निर्वद्य वचन में प्रवृति वह वचनगुप्ति है । सभी प्रकार के हाथ मस्तकादि के इशारों के त्याग पूर्वक मौन धारण करना वह ''मौनवालम्बिनी वचन गुप्ति है । मुहपत्ति के उपयोग पूर्वक निर्वद्य वचन में प्रवृति वह वाड्नियमिनी वचनगुप्ति है ।

३. कायगुप्ति - काया को अशुभ, पापकारी, सावद्य प्रवृति में से अटकाकर निर्वद्य प्रवृति में जोडना वह काय गुप्ति है ।

शास्त्रोक्त विधि अनुसार गमनागमनादि की क्रियायें करना वह यथाचेष्टानियमिनी कायगुप्ति है । मरणांत उपसर्गो में भी काया को स्थिर रखना चलायमान न होने देना वह केवली भगवंत समान संपूर्ण काय योग का निरोध वह चेष्टा निवृति कायगुप्ति है ।

परिषह

परि याने समस्त प्रकार से (कष्ट को) सह याने सहन करना । कष्ट को समता भाव से सहन करना पर धर्म मार्ग से चलायमान न होना वह परिषह है । ऐसे २२ परिषह हैं ।

''खुहा पीवासा सीउण्हं दंसा चेला रइत्थिओ ।
चरिआ निसिहिया सिज्जा, अक्कोस वह जायणा ।। २७ ।।

क्षुधा (भुख) पीपासा (प्यास) शीत, उष्ण, दंश, अचेलक, अरति, स्त्री, चर्या, नैषेधिकी, शय्या, आक्रोश, वध और याचना परिषह

१. क्षुधा परिषह :- देह में क्षुधा व्याप्त होते हुए भी मुनि फल वगैरह का छेदन न करे, न करावे, न स्वयं पकायें, न अन्य से पकवायें, भूख को समता पूर्वक सहन करें । अदीन भाव से विचरें वो क्षुधा परिषह जय है ।

२. पिपासा परिषह :- पिपासा याने प्यास (तृषा) मुनि प्यास से अत्यंत व्याकुल हो जावे, भला सूख जाये फिर भी सचित्त पानी का सेवन न करे । प्रासुक जल निर्दोष मिले तो ही ले । आर्तध्यान न करे समता भाव में रहे वह पिपासा परिषह जय है ।

३. शीत परिषह :- कडकडाती ठंडी में शरीर अकडजाय तो भी साधु को न कल्पे ऐसे वस्त्र या अग्नि आदि की इच्छा न करे । राग, द्वेष बिना समाधी भाव में स्थिर बने ।

४. उष्ण परिषह :- ग्रीष्म कालीन सूर्य के परिताप से संतप्त हो, धूल मेल आदि से पीडीत हो फिर भी आकुल व्याकुल न बने, स्नान की इच्छा न करें, वस्त्र आद से हवा न करें वह उष्ण परिषह जय है ।

५.दंश परिषह :- डांस, मच्छर, आदि का उपद्रव होने पर भी उससे संत्रस्त न बने, मन में उनके प्रति द्वेष न लावे । उन्हें दूर भगाने के लिये जहरी उपाय या धुआ वगैरह न करें । समभाव में रहे वह दंश परिषह जय है ।

६. अचेल परिषह :- वस्त्र मिले या न मिले, जीर्ण मिले, नये मिले मुल्यवान मिले, अल्पमुल्य वाले मिले, सभी परिस्थिती में साधु अदीन रहता है, समतायुक्त रहता है अचेल परिषह जीता कहा जाता है ।

७. अरित परिषह :- अरति अर्थात उद्वेग, अरुचि । साधु को सयंम जीवन में गांव गांव विहार करते अनेक अरति के प्रसंग आने पर भी मन में किसी भी प्रकार का विषाद न लाकर धर्मभाव दृढ करना परतुं उद्वेग धारण न करना, समता रखना यह अरति परिषह जीत कहलाती है ।

८. स्त्री परिषह :- आत्म कल्याण के मार्ग पर आगे बढते साधु के लिये स्त्री विघ्न करने वाली है । साधु को नीचे गिराने वाली है, ऐसा जानकर स्त्री की तरफ सराग दृष्टि न करे, संयम की मर्यादा में रहकर व्यवहार करे । मन वचन काया को कहीं भी अब्रम्ह की ओर झुकने न दे वह स्त्री परिषह विजय है । साध्वीजी भगवंत के लिये यह बात पुरुष परिषह रुप विचारना है ।

९. चर्या परिषह :- चर्या याने चलना (विहार) साधु एक स्थान पर मठ या आश्रम बनाकर न रहे ? शास्त्र मर्यादा अनुसार नवकल्पी विहार करे उसमें प्रमाद न करे । यह चर्या परिषह जय है ।

१०. नैषेधिकी परिषह :- राग, द्वेष रहित साधु चंचलता का त्याग करके वहाँ आने वाले उपसर्गो में समता धारण करे वह नैषेधिकी परिषह जय कहलाता है । इसे स्थान परिषह और निषधा परिषह भी कहते है ।

११. शय्या परिषह :- उत्कृष्ट या निकृष्ट उपाश्रय पाकर, उंची या नीची शय्या पाकर भी साधु हर्ष या शोक न करे । सुख दुख आ पडे उसे समता पूर्वक सहन करे वह शय्या परिषह का विजय है ।

१२. आक्रोश परिषह :- साधु, कठोर, दारुण, कर्णकंटक कान को पीडाकारी वाणी सुनकर भी मौन धारण करे, क्रोध न करे, द्वेष न लावे, आक्रोश न करे समता रखे वह आक्रोश परिषह जय है ।

१३. वध परिषह :- कोई अज्ञानी जीव पूर्व भव के वैर के कारण मारे चोट पहुँचाये अथवा मार डालने का प्रयत्न करे तो भी साधु न बदले की अपेक्षा रखे न तो मन में क्रोध या द्वेष लाये परंतु आत्मा अमर है, इसका चिंतन करे आर्त रौद्रध्यान न करके धर्मध्यान में लीन बनकर समता से सहन करे वह वध परिषह जय है ।

१४. याचना परिषह :- साधु को जीवनभर याचना से ही मिलता है । उसके पास अयाचित कुछ भी नहीं होता । मान और लज्जा को जीतकर स्वयं के संयम

निर्वाह के लिये जरुरी वस्तु की याचना करता है । घर घर भिक्षा के लिये भी भ्रमण करता है । यह याचना परिषह है उसमें अदीनता वह परिषह जय है ।

अलाभ रोग तणफासा, मल्ल सक्कार परीसहा ।
पन्ना अन्नाण सम्मतं,इअ बावीस परीसहा ।।२८ ।।

गाथार्थ - अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और सम्यकत्व इस प्रकार बावीस परिषह है ।

१५. अलाभ परिषह :- याचना करने के पश्चात भी कभी साधु को इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती तब साधु दुःखी नहीं होता । मन में द्वेष या दुर्भाव न लावे, परंतु समताभाव धारण करे । मिले तो संयमवृद्धि न मिले तो तपवृद्धि । ऐसी भावना भाकर अलाभ परिषह को जीते ।

१६. रोग परिषह :- शरीर यह रोगों का घर है । साधु जीवन में भी अशाता वेदनीय के उदय से रोग उत्पन्न होता है, तब साधु अनुताप न करे, आर्तध्यान न करे, परंतु समता रखे, चिकित्सा की इच्छा भी न रखे । यही रोग परिषह जय है ।

१७. तृणस्पर्श परिसह :- जिनकल्पी साधुओ को तृण (घास) का संथारा होता है । तृण या घास की नोंक शरीर में चुभे तो भी वस्त्र की इच्छा न रखे । स्थविर कल्पी साधु को वस्त्र का ही संथारा होता है तो भी प्रतिकुल हो तो भी दीन न बने । मन को चंचल न बनाये, मन की समाधि टिकाये रखे वह तृण परिसह जीत कहलाती है ।

१८. मल परिषह :- मैल, धूल या गर्मी के परिताप से पसीना वगैरह आये फिर भी स्नान की इच्छा न करे, मल परिषह को साधु सहन करे ।

१९. सत्कार परिषह :- साधु का गृहस्थ सत्कार, सम्मान करे उससे साधु हर्षित न हो ऐसे सत्कार, सम्मान की इच्छा भी न रखे । कहीं सन्मान, सत्कार न हो तो उद्वेग भी न करे वह सत्कार परिषह का विजय है ।

२०. प्रज्ञा परिषह :- साधु की प्रज्ञा अच्छी हो तो अच्छा पढे, बहुश्रुत बने । अनेकों के पूछे गये प्रश्नो के संतोषकारक जवाब भी दे सके, फिर भी अहंकार न करे परंतु पूर्व के महाज्ञानीओ को याद करे वह प्रज्ञा परिषह जय है ।

२१. अज्ञान परिषह :- कर्म के उदय से शायद प्रज्ञा सूक्ष्म न मिलने से गृहस्थों के प्रश्न के जवाब न दे सके तो उद्वेग न धारण करे । श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म का उदय मानकर समता धारण करे वह अज्ञान परिषह जय कहलाता है ।

२२. सम्यक्त्व परिषह :- चाहे जैसे भयानक कष्ट और उपसर्ग आए, तो भी परमात्मा के शासन पर, परमात्मा के उपर की श्रद्धा से जरा भी चलित न हो । प्रभु के तत्वज्ञान और मोक्ष मार्ग पर अटूट श्रद्धा धारण करे । चमत्कार देखकर मिथ्याधर्म के प्रति आकर्षित न हो वह सम्यक्त्व परिषह जय है ।

तीर्थंकरो की जीवन यात्रा

(श्री नेमिनाथ एंव श्री पार्श्वनाथ)

श्री नेमिनाथ प्रभु :-

श्री नेमिनाथ प्रभु के पाँच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए है । चित्रा नक्षत्र में देवलोकसे च्यवन होकर गर्भ में आये । चित्रा नक्षत्र में जन्मे, चित्रा नक्षत्र में दीक्षा ली, चित्रा नक्षत्र में केवलज्ञान पाया और मोक्ष भी चित्रा नक्षत्र में ही हुआ । श्री नेमिनाथ प्रभु आसो वदि बारस को बत्तीस सागरोपम स्थितिवाले अपराजित विमान से अंतर रहित च्यवकर इस जंबूद्वीपके भरत क्षेत्र में शौर्यपुर नगर के समुद्रविजय राजा की शिवादेवी नामक रानी के उदर से श्रावण सुदि पंचमी के दिन नवमास बराबर पूर्ण कर जन्मे ।

श्री नेमिनाथ गर्भ में थे तब शिवामाता ने गर्भ में रिष्टरत्नमय नेमि याने चक्रधारा देखी थी अतः पिताने बालक का नाम अरिष्टनेमि रखा । नाम में अपमंगलता नष्ट करने के लिये ''अ'' लगाया है । युवावस्था को प्राप्त नेमिकुमार को शिवादेवी माता ने कहा कि, ''हे पुत्र ! तू विवाह कर हमारे मनोरथों को पूर्ण कर ?''

उस समय अन्य स्त्रियों की वचन युक्ति से और यादवों के आग्रह से नेमिकुमार मौन रहे । नेमिकुमार को देखकर सब ने ऐसा मान लिया कि नेमिकुमार ना नहीं कह रहे, इससे उन्हें वचन स्वीकार है ।

उग्रसेन राजाकी कन्या और कंस की बहन कुमारी राजीमती थी उसका हाथ मांगा गया । श्रीकृष्ण ने यह संबंध मनवाकर कोष्टिक नामक नैमित्तिक को नेमिकुमार और राजीमती का लग्ममुहूर्त निकलाने को कहा । नैमित्तक ने कहा ''चातुर्मास में अन्य कार्यों की भी ना कही गयी है तो विवाह कैसे होगा ?'' तब राजा समुद्रविजय ने कहा कि, ''श्रीकृष्ण ने महामेहनत से नेमिकुमार से विवाह की स्वीकृति ली है, तो अब इस काम में विलंब नहीं होना चाहिये । विघ्न न आये ऐसा समीपवर्ती मुहूर्त बताओ ।'' तब निमित्तिया ने मुहूर्त निकाला श्रावण सुदि छठ का । फिर विवाह योग्य वस्त्र अलंकारों से अलंकृत हो कर रथमें बैठे नेमिनाथ । जनता को आनंद देनेवाले, छत्र से शोभित, समुद्रविजय आदि दशार्ह एवं कृष्ण बलभद्र आदि परिवार से परिवेष्टित श्री नेमिकुमार शिवादेवी आदि उत्तमस्त्रियों की धवलमंगल गीतों की गूँज के बीच विवाह करने निकले । जाते जाते पशुओंका करुणस्वर सुना और सारथि से पूछा ''यह करुण स्वर किसका है ?'' सारथि ने कहा ''तुम्हारे विवाह प्रसंगपर एकत्रित हुए महेमानों के लिये भोजनविधि के लिये लाये हुए पशुओं के स्वर है ।'' यह सुनकर नेमिकुमार सोचने लगे ''यह विवाह महोत्सव धिक्कारपात्र है, जो पशुओं के लिये शोकरुप है ।''

नेमिकुमार ने सारथि को कहा ''रथको पीछे लो, मुझे विवाह नहीं करना ।'' पशुरक्षकों को पशुओं को छोड देने की आज्ञा दी । मातापिता ने विवाह के लिये बहुत समझाया, तब नेमिकुमार ने कहा ''हे माताजी ! आप यह आग्रह मत करो, मुझे मानुषी स्त्री पर प्रेम नहीं है, मुझे मुक्तिवधु पर प्रेम हुआ है, अतः शिववधू प्राप्त करने का प्रयत्न करुँगा ।''

श्री नेमिकुमार को गृहस्थावास में कुमारपने में तीनसौ वर्ष हुए तब जीतकल्पिक लोकांतिक देवों ने आकर ''हे लोकनाथ । जगहितकारी, सुखकारी ऐसा

धर्मतीर्थ प्रवर्तावो'' वगैरह कहा । नेमिकुमार ने श्रावण सुद छठ को वरसीदान दिया ।

श्री नेमिनाथ प्रभु मनुष्य, देव और असुरों से घिरे हुए द्वारिका नगरी के मध्य भाग से निकलकर नगरी के बाहर जहाँ रैवतक नामक उद्यान है और जहाँ अशोकवृक्ष है वहाँ आकर पालखी में से उतरे, स्वयंही पंचमुष्टि लोच किया और छट्ठ के व्रत के साथ, निर्जल तप से इन्द्र ने दिये हुए एक देवदूष्य वस्त्र को लेकर एक हजार पुरषों के साथ दीक्षा ग्रहण कर घर से निकले, प्रभु साधुपने को पाये । श्री अरिष्टनेमि अरिहंत चौवन रात्री दिवस निरंतर अपने शरीर को वोसिराकर रहे । पचपनवे रात्रिदिवस में आसो मास के कृष्ण पक्ष, अमावस्या के दिन, दिन के अंतिम प्रहर में गिरनार पर्वत के शिखर पर वेतसवृक्ष के नीचे चोविहार अट्ठम तपसे शुक्ल ध्यान के मध्य में रहे हुए ऐसे प्रभु को अनंत एवं अनुपम ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुआ । उसके कारण संपूर्ण लोक में रहे हुए सर्व प्राणियों को संपूर्ण भावोंसे जानते हुए विचर रहे थे ।

प्रभु के केवलज्ञान की बधाई वनपालक ने श्रीकृष्ण वासुदेव को दी । फिर संपूर्ण परिवार एवं नगरजनों के साथ बडे आडंबरपूर्वक श्रीकृष्ण वासुदेव प्रभु को वंदनकरने आये । प्रभुने देशना दी, वह सुनकर वरदत्त आदि दो हजार राजाओं ने दीक्षा ली । फिर प्रभु को श्रीकृष्ण ने राजीमती के स्नेह का कारण पूछा, प्रभुने जवाब दिया कि ''पहले भव में मैं धन नामक राजपुत्र था तब राजीमतीका जीव धनवती नामक मेरी पत्नी थी । दुसरे भव में हम दोनो पहले देवलोक में देव और देवी थे । तीसरे भवमें मैं चित्रगति नामक विद्याधर हुआ और राजीमती रत्नावती नामक मेरी पत्नी बनी, चौथे भव में हम दोनो चौथे देवलोक के देव बने । पांचवे भव में मै अपराजित राजा और वह प्रियतमा नामक पत्नी रही, छठ्ठे भव में हम दोनों ग्यारहवे देवलोक मे देव हुए, सातवे भव में मै शंख नामक राजा हुआ और वह यशोमती रानी थी, आठवे भव में हम दोनो अपराजित विमान में देव हुए । इस नौवे भव में मैं और यह राजीमती है, हे कृष्ण ! नौ भवों के संबंध से राजीमती को मुझपर स्नेह है ।

श्री अरिष्टनेमि प्रभु आषाढ सुद अष्टमी को गिरनार पर्वत के शिखर पर ५३६ साधुओं के साथ एक मास के चोविहार उपवासों के तप सहित अनशन पूर्वक मध्य रात्री के समय पद्मासन में निर्वाण पाये ।

श्री पार्श्वनाथ प्रभु :-

श्री पार्श्वनाथ प्रभु के पाँचो ही कल्याणक विशाखा नक्षत्र में हुए है । पुरुषादानीय श्री पार्श्वनाथ फागुन वदी चौथ को बीस सागरोपम की स्थितिवाले प्राणत नामक दसवे देवलोक से आयुष्य पूर्ण होने पर च्यवकर इसी जंबुद्वीप के भरत क्षेत्र में, वाराणसी नगरी में अश्वसेन राजा की वामारानी के उदर में गर्भपने मध्यरात्री के समय आये । सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद श्री पार्श्वनाथ प्रभु के दस भव हुए, उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है -

जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में पोतनपुर नगर में अरविंद राजा राज्य करता था, उस राजा का विश्वभूति नामक पुरोहित था । उसकी अनुध्दरी नामक पत्नी थी । उस पत्नीसे उसे 'कमठ' और 'मरुभति' नामक दो पुत्र हुए । मातापिता मृत्युको प्राप्त होने के बाद राजाने कमठ को राजपुरोहित

बनाया । उससे उन्मत्त बने हुए कमठ अपने लघुभ्राता की पत्नी के साथ दुराचार करने लगा । इस बात की छोटे भाई मरुभूति को खबर पडी । उसने राजासे यह बात कथन की अतः राजा ने कमठ को निकाल डाला और मरुभूति को पुरोहित बनाया । दुःखी कमठ ने तापसी दीक्षा ली । बारह वर्षों तक तपस्या की । फिर अपने गाँव तापस के रुप में आया । उसके समाचार मिलते ही मरुभूति अपने भाई तापस को खमाने गया । तब कमठ ने वैर याद कर उसके मस्तक पर बडी शीला दे मारी, उस मार से मरुभूति जो पार्श्वनाथ प्रभु का जीव था उसकी मृत्यु हो गई । इति प्रथम भव

दुसरे भव में मरुभूति विंद्याचल की अटवी में 'सुजातक' नामक हाथी हुआ । कमठ मरकर पक्षी की तरह उडता हुआ 'कुर्कुट' नामक सर्प हुआ । किसी समय अरविंद राजर्षि विंद्याचल की अटवी में आये । उन्होंने मरुभूमि को हाथी के जन्म में आया है जानकर उसे प्रतिबोध किया ।हाथी को जातिस्मरण ज्ञान हुआ । उसने अपना पूर्वभव देखा । व्रत स्वीकारा । फिर मुनि को वंदन कर चला गया । कुर्कुट सर्प ने हाथी को देखा और वैरभाव जागृत हुआ । उसने हाथी के मस्तक के उपर डंख दिया अतः हाथी शुभ ध्यान में मृत्यु को प्राप्त हुआ, इति दूसरा भव ।

मरुभूति का तीसरा भव - आठवें देवलोक में देवपने उत्पन्न हुआ । कुर्कुट सर्प मरकर पाँचवे नर्क में नारकी बना । इति तीसरा भव ।

चौथे भव में मरुभूति का जीव देवलोक से च्यवकर इस जंबूद्वीपमें महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छविजय में वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी में तिलवती नगरी में किरणवेग नामक राजा हुआ ।

वैराग्य पाकर राजा ने दीक्षा ली । विहार करते हुए वैताढ्य पर्वत के हेमशैल शिखर पर कायोत्सर्ग किया । कमठ का जीव पाँचवी नरक से निकलकर असह्य दुःख भोगकर, उसी वैताढ्य पर्वतपर सर्प हुआ था । वह उस समय वहाँ आया । उस सर्प ने मुनि को देख, पूर्व के वैर के संस्कार से मुनि के पैर में डंख दिया । मुनि शुभध्यान में मृत्यु को प्राप्त हुए । इति चौथा भव ।

पाँचवे भव में मरुभूति का जीव बारहवे अच्युत देवलोक में देव हुआ । कमठ का जीव सर्प, मुनि का घात कर पाँचवी नर्क में गया । इति पाँचवा भव ।

छठवे भव में मरुभूति का जीव बारहवे अच्युत देवलोक से च्यवकर इस, जबूंद्वीप के पश्चिम महाविदेह में गंधिलावती विजय में शुभंकर नगरी में वज्रनाभ नामक राजा हुआ । वहाँ श्री क्षेमकर तीर्थंकर प्रभु पधारे । राजा उनके पास जाकर वंदना कर, देशना सुनकर प्रतिबोधित हुआ और उसने दीक्षा ले ली । फिर ग्यारह अंगोका अभ्यास कर उस मुनि ने जंगाचरण की लब्धि प्राप्त की । उस लब्धि के बल से सुकच्छ विजय में ज्वलन पर्वत पर जाकर कायात्सर्ग में रहे । इधर कमठ का जीव पाँचवी नर्क के असह्य दुःख भोगकर वहाँ से निकलकर संसार में बहुत भव करते हुए उसी पर्वतपर 'कुरंग' नामक भिल्ल हुआ । साधु को देखकर भिल्ल का वैरभाव उत्पन्न हुआ उसने साधु को बाण मारा, उससे मुनि तूर्त ही मृत्यु को प्राप्त हुए । इति छठ्ठा भव ।

सातवे भव में मरुभूमि का जीव मध्यम ग्रैवेयक में देवपने उत्पन्न हुआ । मुनिघात के पाप से भिल्ल मृत्यु पाकर सातवी नर्क में उत्पन्न हुआ । इति सातवा भव ।

आठवे भव में मरुभूति का जीव मध्यम ग्रैवेयक से च्यवकर इस जंबूद्वीप के महाविदेह में शुभंकरा विजय में पुराणपुर नगर में सुवर्णबाहु नामक चक्रवर्ती हुए । चक्रवर्ती ने तीर्थंकर प्रभु की देशना सुनकर वैराग्य पाकर दीक्षा ली । बीसस्थानक तप की सुंदर

आराधना की और तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया । कमठ का जीव सातवी नरक से निकलकर वन में सिंह हुआ । किसी समय उस सिंह ने चक्रवर्ती मुनि को देखकर पूर्वभव के वैर से मुनि को मार डाला । इति आठवां भव ।

नौवे भव में शुभध्यान से मृत्यु को प्राप्त उस साधु मरुभूति का जीव दसवे प्राणत देवलोक में देवपने उत्पन्न हुआ । कमठ का जीव सिंह साधु को मारकर मृत्यु के बाद चौथी नरक में उत्पन्न हुआ । इति नौवा भव ।

दसवे भव में देवलोक से च्यवकर मरुभूमि का जीव इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में वाराणसी नगरी में अश्वसेन राजा की रानी वामादेवी के उदर में उत्पन्न हुआ, चौदरस्वप्न माता को आये । कमठ का जीव चौथी नरक में असह्य दुःख भोगकर एक दरिद्री ब्राह्मण के यहाँ पुत्ररुप से उत्पन्न हुआ । उसके मातापिता बचपन में ही कालवश होने से गांव के लोगोंने उसे पाला । कभी इन्द्रमहोत्सव के अवसरपर नगरवासी लोक वस्त्राभूषणों से अलंकृत हुए देखकर कमठ सोचता है कि, ''इन लोगों ने पूर्वभव में धर्म की आराधना की हुई है, अतः वे सुखी है । मैने पूर्वभव में धर्मध्यान किया नहीं है, अतः दुःखी हूँ । ऐसा सोचकर उसने तापसी दीक्षा ली, और वह पंचाग्नि तप करता हुआ लोगों में प्रसिध्द हुआ ।

पुरुषादानीय श्री पार्श्वनाथ अरिहंत मार्गशिर्ष वदि दसम को नवमाह पूर्ण होने पर उपर साढेसात रात्रीदिवस बीत जानेपर मध्यरात्री में जन्मे । वह रात्री बहुत सारे देवदेवीयों से अत्यंत व्याकुल हुई हो, उनके शब्दों से कोलाहलमय एवं प्रकाशमय बन गयी थी । वामादेवीने पार्श्वनाथ गर्भ में आने के बाद एक बार शय्यामें सोते वक्त अपने पाससे काला नाग जाता हुआ देखा था अतः प्रभु का नाम पार्श्व रखा ।

पुरुषादानीय पार्श्वनाथ प्रभु दक्ष, प्रतिज्ञावाले, उत्तमरुपवाले, सर्वगुणयुक्त, भद्र एवं विनयी थे । पाँच धावमाताओं से पालन हुआ । बीज के चंद्रमा की तरह वृद्धि पा कर, मातापिता को आनंद देते हुए प्रभु यौवनवय को प्राप्त हुए । उस वक्त कुशस्थल नगर के प्रसेनजित राजा के उपर म्लेच्छ लोगों ने आक्रमण किया तब उस राजा की सहायता के लिये विनंती आने पर अश्वसेन राजा वहाँ जाने की तैयारी करने लगे तब पार्श्वकुमार पिता से विनंती कर खुद सहाय करने तैयार हुए । यह देख इन्द्र ने सारथि सहित अपना रथ प्रभु के लिये भेजा । उस रथपर बैठकर पार्श्वकुमार आकाशमार्ग से जाकर कुशस्थल नगर के पास आये तो म्लेच्छ लोग प्रभु को देखकर भाग गये । फिर प्रसेनजित राजा ने पार्श्वकुमार का बहुत आदर सत्कार किया । उत्सवपूर्वक नगर प्रवेश कराया और बहुत सेवा भक्ति की ।

पार्श्वकुमार को नौ हाथ प्रमाण, नीलवर्ण कान्ति से दीप्त शरीरवाले, अत्यंत स्वरुपवान, एक हजार आठ लक्षण को धारण करनेवाले, महासौंदर्य युक्त कांतिवाले देख राजपुत्री प्रभावती के साथ विवाह करनेका बहुत आग्रह किया, पार्श्वकुमार को इच्छा न थी परंतु भोगावली कर्म जानकर आग्रवहश पार्श्वकुमार प्रभावती के साथ विवाह कर वाराणसी लौटे ।

एक बार कमठ नामका तापस नगरी के बाहर गंगा नदी के तीरपर अग्निकुंड जलाकर तप कर रहा था । यह जानकर नगरजन उसे देखने जाने लगे । गवाक्ष में बैठे पार्श्वकुमार ने पूछताछ की और कमठ का वृतान्त जाना खुद भी वहाँ जाकर अवधिज्ञान से देखा तापस ने जलाई हुई अग्नि में जलते नाग को देखकर

कहा ''यह तो अज्ञानकष्ट है, इसमें तथ्य कुछ भी नहीं है ।'' अतः हे तापस आप व्यर्थ ही आत्मा को क्लेश दे रहे हो, यह सुनकर क्रोधित हुए तापस ने कहा ''राजपुत्र को तपजप का क्या परिचय ? वह तो हाथीघोडे दौडावे, तपजप की बात तो योगी जान सकते है । जीवदया भी योगी ही जान सकते है ।''

योगी के ऐसे वचन सुनकर अग्निकुंड में से अधजली लकडी निकालकर उसे चिराया तो उसमें से अधजला नाग निकालकर उस सर्प को सेवक के मुँह से नवकार सुनाया । फिर उस सर्प ने शुभध्यान में प्राण त्यागे और धरणेन्द्र नामक भवनपति देवों में नागेन्द्र हुआ । अग्निकुंड से सर्प निकला हुआ देखकर लोग कमठयोगी की निंदा और पार्श्वकुमार की प्रशंसा करने लगे और तापस को छोड सब विदा हो गये । मानभ्रष्ट तापस वहाँ से चला गया और हठ से अज्ञानतप कर मरकर भवनपति देवों में मेघमाली देव हुआ ।

पार्श्वकुमार प्रभावती के साथ किसी समय वन में गये हुए थे वहाँ एक सुंदर प्रासाद में नेमिनाथ प्रभु के बारात के एवं बिना विवाह किये राजीमती के त्याग तथा दीक्षा ग्रहण के चित्र देखे । तब विशेष वैराग्य जागृत हुआ, उसी समय लोकांतिक देवोंने प्रभु के पास आकर विशेषगुणवाली वाणी से कहा कि ''हे भगवन ! तुम्हारा जयजयकार हो । हे समृद्धिवान आप जयवंता रहो, हे कल्याण करनेवाले आप जयवंता रहो ।'' ऐसा कहकर उन्होने जय जय शब्द कहे । धर्मतीर्थ प्रवर्तन करनेकी बिनती की ।

पुरुषादानीय श्री पार्श्वनाथ प्रभुको गृहस्थधर्म के पहले भी मनुष्य योग्य अनुपम एवं उपयोग होने से जान सके ऐसे अवधिज्ञान की प्राप्ति थी ही । उस ज्ञान का उपयोग दे कर प्रभुने अपनी दीक्षा का अवसर जानकर सांवत्सरिक दान दिया ।

मार्गशिर्ष वदी ग्यारस के दिन प्रथम प्रहर में 'विशाला' नामक शिबिका में बैठकर मानव, देव एवं असुरों के अगवानी में वाराणसी नगरी के मध्य से निकलकर आश्रमपद नामक उद्यान में आये । वहाँ अशोकवृक्ष के नीचे पालखी से उतरकर स्वयं ही आभूषण त्यागकर पंचमुष्टि लोच किया । जलपान रहित अट्ठम तप के साथ, इंद्र द्वारा दिये हुए वस्त्र को कंधेपर रखकर देवदूष्य वस्त्र लेकर तीन सौ पुरषों के साथ दीक्षा लेकर पार्श्वनाथ प्रभु साधुपने को प्राप्त हुए ।

तिरासी दिनतक पुरुषादानीय पार्श्वनाथ प्रभुने शरीर को वोसिरा दिया । याने शरीरपर की ममता का त्याग कर कायोत्सर्ग में लीन रहे । देवकृत, मनुष्यकृत एवं तिर्यंचकृत अनुकूल, प्रतिकूल उपसर्ग हुए उन्हें सहन किये, भोगे, खमाया और निर्भिक सहन किया । उसमें कमठ जो मरकर मेघमाली देव हुआ था उस देव के उपसर्ग इस प्रकार है ।

चारित्र लेने के बाद विहार करते प्रभु किसी तापस के आश्रम में पहुँचे । वहाँ एक कुए के पास वटवृक्ष के नीचे काउसग्ग ध्यान में रहे । इस वक्त अवधिज्ञान से मेघमाली देव ने पार्श्वप्रभु को देखा । पूर्व वैर से वहाँ आकर उस देव ने वेताल के, बिच्छु के, सर्प के, सिंह के, हाथी के और अनेक जाति के रुप विकुर्वाकर उपसर्ग करने लगा । उन उपसर्गो के कारण प्रभु किंचितमात्र भी ध्यान से डिगे नहीं । अतः उस देव ने गुस्से में आकर कल्पांत काल जैसा वायु विकुर्वा, धूल वृष्टि कर पार्श्वप्रभु के आँख, कान, नाक धूल से भरकर श्वास रुंधा दिया । फिर मेघ विकुर्वाये, मुसलाधार बारीश करायी, और ब्रम्हांड टूट जाय ऐसी तांडव गर्जना करने लगा । क्षणभर में वर्षा का पानी प्रभु के कंठ तक आ गया । देव के प्रभाव से पानी चारों और फैला नहीं । वहीं के वहीं बढने लगा । उस समय

धरणेन्द्र का आसन कंपित हुआ । अवधिज्ञान का उपयोग देने से पार्श्वप्रभु का उपसर्ग जाना । सपरिवार आकर प्रभु के मस्तक उपर फणाछत्र धारण कर रहा । पद्मावती देवीने प्रभुके पैरों तले पद्मकमल की रचना की, इस तरह तीन दिन तक अखंड मुसलधार बारीश बरसती देखकर इन्द्र ने अवधिज्ञान से देखा । मेघमाली देव को बारीश कराते देखा । तब धरणेन्द्र ने कहा '' हे दुष्ट ! इस प्रभु पर इतना क्रोध ? क्षमासागर प्रभु तो सहन करेंगे परंतु मैं सहन नहीं करुंगा ।'' ऐसा कहकर धरणेन्द्र ने मेघमाली पर वज्र फेंका । तब अत्यंत भयभीत होकर प्रभु के पास आकर अपना अपराध वारंवार खमाने लगा, और प्रभुके चरणो में आकर शरण ली, तब धरणेन्द्र ने उसे कहा ''अरे दुष्ट ! तुने प्रभुका शरण लिया है इसलिये छोड रहा हूँ । ऐसा कहकर इन्द्रने वज्र ले लिया और उसे छोड दिया ।

धरणेन्द्र वंदन कर अपने स्थान पर गया । मेघमाली ने भी अपने दस भव के वैर को खमाकर प्रभु के आगे भक्ति नृत्य कर अपने स्थान चला गया ।

इस तरह देव, मनुष्य एवं तिर्यंचों के किये हुए उपसर्गों को निर्भयपने सहन करते, इरियादि पांच समिति से सीमित तथा तीन गुप्तियों से गुप्त ऐसे पार्श्वनाथ प्रभुने, तिरासी रातदिवस व्यतीत होने पर चौरासीवे रातदिवस के प्रथम प्रहर में फागुन वदी चौथ के दिन प्रथम दो प्रहर के अवसर पर घातकी वृक्ष के नीचे चौविहार छठ्ठ तप सहित शुक्ल ध्यान के प्रथम दो पद का ध्यान करते अविनाशी अनुपम ऐसे उत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्रभु को प्राप्ति हुई ।

सब भावों को जानते और देखते श्री पार्श्वप्रभु जगत के जीवों पर उपदेश से उपकार करते, पृथ्वी को पावन करते विचरने लगे । पुरुषादानीय श्री पार्श्वनाथ अरिहंत को आठ गण और आठ गणधर थे । वे गणधर शुभ, आर्यघोष, वसिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यशस्वी नाम के थे ।

पुरुषादानीय श्री पार्श्वनाथ अरिहंत तीस साल तक गृहस्थावास में रहकर, तिरासी रात्रिदिवस छद्मस्थ अवस्था में रहकर तिरासी दिन न्यून सत्तर वर्ष तक केवली पर्याय पालकर संपूर्ण सौ साल का आयुष्य भोगकर वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र अधाति कर्मों को खपाकर इस अवसर्पिणी के दुषमसुषम नामक चौथे आरे का बहुत सारा काल व्यतीत होने पर श्रावण सुद अष्टमी को श्री सम्मेतशिखर तीर्थरुप पर्वत के शिखर पर अपने साथ और तैंतीस याने कुल चौतीस जन ने पानीरहित मासक्षमण तप से प्रातः के समय दोनों हाथ लंबाकर कायोत्सर्ग ध्यान से मोक्ष में गये । संसार से निवृत्त हुए । सर्व दुःखों से मुक्त हुए । प्रभु के शासन रक्षक पार्श्वयक्ष और पद्मावती यक्षिणी थे । इति संपूर्णम् ।